राष्ट्रभाषा हिन्दी: विकास के सोपान

डा. वीरेन्द्र कुमार सिंह यादव
प्रवक्ता - हिन्दी विभाग,
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उरई, जालौन - 285001

भाषा बहता नीर है जहाँ से होकर भाषा पयस्विनी का प्रवाह होता है। उसकी गन्ध का उसमें समाहित हो जाना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं भाषा पहले बनती है, राष्ट्र बाद में। हिन्दी भाषा के विविध नाम रूप हैं, यथा सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा। इन विविध नाम रूपों के साथ हिन्दी अलग-अलग सदर्भो में विकसित हुई है। हिन्दी को जब हम सम्पर्क भाषा के रूप में देखते हैं तो हमें उसकी एक सुदीर्घ परम्परा दिखाई पड़ती है। सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी देश के एक कोने से दूसरे कोने तक तब भी बोली जाती थी, जब खड़ी बोली के रूप में वह एक सीमित क्षेत्र की भाषा थी। राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी की स्थापना बहुत प्राचीन नहीं है। वह मूलतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की देन है और राजभाषा हिन्दी मुगलकाल से प्रयुक्त होती रही है। वास्तविकता यह है कि सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के सन्दर्भ में हिन्दी के विकास की दिशाएं अलग-अलग रही हैं, क्योंकि इन विविध रूपों में हिन्दी के सामाजिक संदर्भ भी अलग-अलग हैं। अतः सम्पर्क भाषा, राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में हिन्दी को एक करके नहीं देखा जा सकता।

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से राष्ट्र-भाषा का सीधा सा अर्थ है राष्ट्र की भाषा और इस तरह राष्ट्र में जितनी भी भाषाएं प्रयोग की जा सकती हैं, उन सबको राष्ट्र-भाषा कहा जा सकता है। किन्तु राष्ट्र-भाषा का एक रूढ़ अर्थ है जिसका अभिप्राय है वह भाषा, जिसका प्रयोग सामान्यतः सम्पूर्ण राष्ट्र करे। इस रूप में राष्ट्र भाषा और सम्पर्क भाषा समानार्थी हो जाते हैं। परन्तु राष्ट्रभाषा और राजभाषा में एक वैधानिक अंतर है। राजभाषा का अर्थ राजकीय अर्थात राज-काज की भाषा से है। आधुनिक राजनीतिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि केन्द्र व राज्य सरकारें शासकीय पत्र व्यवहार, राजकाज तथा शासकीय कार्यों के लिए जिस भाषा का प्रयोग करती हैं, उसे राजभाषा कहा जाता है। इस तरह राजभाषा और राष्ट्रभाषा में मूल अंतर औपचारिक संवैधानिक मान्यता का है।

राजभाषा किसी भी देश की संविधान सम्मत भाषा होती है, जिसका प्रयोग मूलतः शासन विधान, न्याय पालिका और कार्य पालिका द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत राष्ट्रभाषा राष्ट्र में व्यवहृत भाषा होती है। यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्रभाषा किसी देश की राजभाषा भी हो किन्तु यह आवश्यक है कि राजभाषा उस देश की राष्ट्रभाषा अवश्य हो। वस्तुतः राजभाषा का क्षेत्र कुछ अधिक व्यापक होता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को तीन कालों में बाँटा जा सकता है :-

1. अंग्रेजी शासन से पूर्व राजभाषा हिन्दी
2. अंग्रेजी शासन में राजभाषा हिन्दी
3. स्वतंत्र भारत में राजभाषा हिन्दी।

1. अंग्रेजी शासन से पूर्व राजभाषा हिन्दी

अंग्रेजी शासन से पूर्व अर्थात मुगल शासन में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का व्यापक विस्तार पहले से ही था। यद्यपि मुगल शासन में राजकाज में फारसी का प्रयोग होता था किन्तु फारसी का प्रयोग शासन के उच्च स्तर तक सीमित था। निचले स्तर पर चार-पाँच शताब्दी तक शासन का कार्य हिन्दी में होता था। मध्यकालीन शासन-व्यवस्था के प्रसिद्ध जानकार ब्लाखमैन ने सन् 1871 ई. के "कलकत्ता रिव्यू" में लिखा है "माल गुजारी का इकट्ठा करना और जागीरों का प्रबन्ध करना उस समय बिल्कुल हिन्दुओं के हाथों में था। इसलिए निजी तथा सर्वसाधारण के हिसाब-किताब सब हिन्दी में रखे जाते थे। सभी दस्तूर - उल अमलों से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रारम्भ से लेकर अकबर के शासन काल के मध्य तक सभी सरकारी कागजात हिन्दी में रखे जाते थे।"

राजा टोडरमल, जो अकबर के राजस्व मंत्री थे, के समय आदेश सरकारी कागजातों में फारसी में लिखे जाने लगे और हिन्दी नेपथ्य में चली गई। फारसी सरकारी नौकरी से जुड़ गई। फलतः युवकों ने अनिवार्यतः फारसी सीखी और इससे एक मुंशी वर्ग तैयार हुआ, जिसने तीन शताब्दी तक सरकार और फारसी की सेवा की। कारण स्पष्ट है कि हिन्दी का प्रयोग सीमित हो गया।

2. अंग्रेजी शासन मे राजभाषा हिन्दी

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की स्थापना के बाद भारत में प्रमुख भाषाओं की स्थिति इस प्रकार थी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी की भाषा थी एवं फारसी मुगलकाल से ही देश की राजभाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही थी। इसके साथ क्षेत्रीय भाषाएं (इनमें हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा व्यापक क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा प्रयुक्त होती थी।)

शुरूआती दौर में कम्पनी शासन ने भाषा नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। मुगल शासन के पतन के बाद फारसी का महत्व यद्यपि कम हो गया था और उसका प्रचलन भी सीमित होने लगा था किन्तु कम्पनी शासन ने फारसी को राजभाषा बने रहने दिया। साथ ही हिन्दी की लोकप्रियता और सामाजिक दबाव के कारण फारसी के साथ हिन्दी का प्रयोग भी जारी रहने दिया। फलतः कम्पनी के राजकीय आदेशों, सूचनाओं और अन्य सरकारी कागजों में फारसी और हिन्दी दोनों का प्रयोग मान्य हो गया। कम्पनी शासन ने अपने सिक्कों और स्टाम्पों में फारसी के साथ-साथ नागरीलिपि को भी स्थान दिया। सन् 1830 तक हिन्दी का द्वितीय राजभाषा के रूप में प्रयोग होता रहा। यद्यपि फारसी के प्रयोग में हिन्दी की व्यापक लोकप्रियता के कारण अनेक व्यवहारिक कठिनाइयाँ थी तो भी सन् 1830 तक कम्पनी शासन ने अपनी भाषा-नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। अंग्रेजी में राजकाज करने के लिए तब अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं थी। फ्रेडरिक जॉन और ड्रमन्ड जैसे अंग्रेज अधिकारी भी इस वास्तविकता से अच्छी तरह परिचित थे कि अभी भारतीय जनता पर अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को लादना अव्यावहारिक होगा।

राजभाषा के रूप में देशी भाषाओं के प्रयोग हेतु कम्पनी शासन ने सन् 1830 में बंगला, गुजराती, मराठी आदि को मान्यता दी। कम्पनी शासन की विज्ञप्ति में यह स्पष्ट कहा गया कि अदालतों की भाषा हिन्दी होगी और लिपि नागरी के स्थान पर फारसी भी हो सकती है। 20 नवम्बर सन् 1831 को एक कानून बना जिससे अदालतों में देशी भाषाओं का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके अनुसार बंगाल में बंगला, उडीसा में उड़िया, गुजरात में गुजराती तथा असम में असमिया भाषा को कानूनी स्वीकृति मिली। इस कानून के तहत संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश), बिहार तथा मध्य प्रान्त (मध्य प्रदेश) की अदालती भाषा के लिए हिन्दी को मान्यता मिलनी चाहिए थी किन्तु ऐसा नहीं हो सका। सरकार ने हिन्दी के स्थान पर फारसी

लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू को इन प्रान्तों की अदालतों में मान्यता दे दी। कम्पनी ने राजभाषा फारसी को तो हटाया ही, इसके साथ लोक भाषा हिन्दी को भी अपने पूर्व अधिकार से भी वंचित कर दिया। मलिक मोहम्मद के अनुसार "यह विचित्र विडम्बना थी कि जब तक देश में फारसी का प्रचलन रहा तब तक देशी भाषा होने के कारण हिन्दी और उसकी लिपि नागरी - दोनों को स्थान मिला था किन्तु जब फारसी के स्थान पर उर्दू का प्रचलन हुआ तो हिन्दी का बचा-खुचा प्रयोग भी नष्ट हो गया।"

फारसी लिपि में उर्दू का राजभाषा के रूप में प्रवेश कम्पनी शासन की सुविचारित भाषा नीति के तहत हुआ। इसमें फोर्ट विलियम कालेज के गिल क्राइस्ट की भाषा संबंधी नीति का ही अनुसरण किया गया था। गिलक्राइस्ट उर्दू के पोषक थे। उनकी प्रेरणा से ही उर्दू फारसी के स्थान पर सरकारी भाषा बनाने के योग्य हुई। उन्होंने हिन्दुस्तानी (हिन्दवी, अरबी, फारसी का मिश्रित रूप) के रूप में उर्दू का ही प्रचार किया। इससे उर्दू की सरकारी स्थिति दृढ़ हो गई। डा. नीलम मुकेश के अनुसार "सम्भवतः यह बिट्रिश शासकों की चाल थी। वे उर्दू को प्रोत्साहन देकर मुसलमानों को प्रसन्न रखना चाहते थे क्योंकि उर्दू उस समय देश के जनसाधारण की भाषा नहीं थी तथापि अंग्रेजों ने उसे सरकारी क्षेत्रों में स्थान देकर हिन्दी के प्रति घोर अन्याय किया था। कचहरियों में उर्दू को बलपूर्वक थोपकर अंग्रेजों ने ऐसा वातावरण तैयार किया जिससे भाषा के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता पनपी।"

मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त तथा बिहार के लोगों की मातृभाषा मुख्यतः हिन्दी थी। इसलिए इन प्रान्तों में उर्दू को अदालती भाषा बनाने के विरूद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसका एक व्यावहारिक कारण यह भी था कि अदालती भाषा नाम के लिए उर्दू थी किन्तु वह फारसी के जटिल शब्दों से बोझिल थी। फारसी से बोझिल इस उर्दू के लिए अंग्रेज विद्वान ग्रौस की टिप्पणी थी "आजकल कचहरी की भाषा बड़ी कष्टदायक है क्योंकि एक तो वह विदेशी है, दूसरे इसे भारतवासियों का अधिकांश भाग नहीं जानता।" अतः यह मांग जोर पकड़ने लगी कि अदालतों की भाषा सरल, सुबोध और नागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी होनी चाहिए। इस मांग ने एक व्यापक आन्दोलन का रूप ले लिया। फलतः सन् 1870 में सरकार ने एक आदेश पत्र जारी किया। इसमें कहा गया कि फारसी बहुल उर्दू नहीं लिखी जाए बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाये जो एक कुलिन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतः

अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं हुआ और फारसी से बोझिल उर्दू का प्रयोग जारी रहा।

सरकार ने सन् 1873 में एक आदेश दिया कि बिहार की अदालतों और दफ्तरों में सब विज्ञप्तियाँ और घोषणाएं हिन्दी में जारी की जाएं परन्तु इस आदेश का क्रियान्वयन ईमानदारी से नहीं हुआ और उर्दू का प्रयोग उसी प्रकार होता रहा। अप्रैल, 1874 में एक परिपत्र द्वारा हिन्दी के नागरी लिपि में प्रयोग का पुनः आग्रह किया गया कि सन् 1873 के आदेश का पालन किया जाए। फिर भी हिन्दी का बहिष्कार जारी रहा। सन् 1875 में सरकार ने पुनः एक परिपत्र सम्पूर्ण विभागीय अधिकारियों के पास भेजा किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिए आन्दोलन को बढ़ते देखकर बंगाल के लेफ्टिनेंट गर्वनर सर ऐड्राले ने राजभाषा नीति पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने सोचा कि सरकारी आदेश का पूर्ण पालन तभी सम्भव हो सकेगा जब वे केवल नागरी लिपि में लिखे जाएं तथा जनता की ओर से जो कागज अदालतों में प्रेषित किए जाएं वे भी क़ेवल इसी (नागरी) लिपि में हों। नये शासकीय आदेश में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि फारसी लिपि में कोई कागज न तो अदालतों से जारी किया जाए और न जनता से अदालतों में स्वीकार किए जाएं। इसके अतिरिक्त पुलिस अधिकारियों को आदेश दिया गया कि यदि वे जनवरी, 1881 तक नागरी लिखना-पढ़ना नहीं सीखेंगे तो उन्हें हटा दिया जायेगा। उनकी जगह हिन्दी जानने वालों को ले लिया जायेगा। पहले इस आदेश की भी उपेक्षा की गई किन्तु शासन की दृढ़ता को देखकर क्रमशः फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू का स्थान हिन्दी ने ले लिया। इस प्रकार मध्य प्रान्त की कचहरियों में हिन्दी को स्थान मिला। उधर संयुक्त प्रांत की अदालतों में हिन्दी को मान्यता देने के लिए आन्दोलन चलता रहा। सन् 1854 व सन् 1856 के सरकारी आदेशों से हिन्दी को प्रांत के राजस्व विभाग की अदालतों में स्थान मिल गया था किन्तु यह सन्तोष जनक स्थिति नहीं कही जा सकती थी।

वार्षिक प्रांतीय भाषा रिपोर्ट में सन् 1873-74 में कहा गया कि प्रांत के 71 प्रतिशत विद्यार्थी हिन्दी माध्यम से पढ़ने के इच्छुक हैं किन्तु सरकार ने इसकी उपेक्षा करते हुए सन् 1877 में एक आदेश निकाला जिसके अनुसार 'सरकारी नौकरियां केवल उनको ही उपलब्ध होंगी जो उर्दू या फारसी भाषा के साथ 'वर्नाकलुर' अथवा 'एंग्लो मिडिल परीक्षा'

उत्तीर्ण होंगे। इस आदेश से हिन्दी समर्थकों को आघात पहुंचा। फलतः सन् 1880 तक आते आते हिन्दी आन्दोलन काफी व्यापक हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में लेखकों और पत्रकारों ने राजभाषा हिन्दी आन्दोलन को आगे बढ़ाया। सन् 1882 में शिक्षा आयोग के प्रश्न पत्र के उत्तर में भारतेन्दु जी ने लिखा - "सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है जहाँ न तो अदालती भाषा शासकों की मातृ भाषा है और न प्रजा की।"

सन् 1893 में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। सन् 1896 में यह बात तेजी से फैली कि फारसी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि अपनाई जायेगी। इससे हिन्दी और उर्दू समर्थकों को समान रूप से धक्का पहुँचा। हिन्दी समर्थकों ने नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अंग्रेजी में 'नागरी कैरेक्टर' नामक पुस्तक में भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला। तब अंग्रेज सरकार को रोमन लिपि के प्रति देशवासियों की विरोध भावना का पता चला। इस विवाद को हल करने के लिए एक समिति नियुक्त हुई। उसने भी रोमन लिपि के पक्ष में ही अपना निर्णय दिया। नागरी प्रचारिणी सभा ने इसका सक्रिय विरोध किया।

राजभाषा हिन्दी आन्दोलन की बागडोर पंडित मदनमोहन मालवीय के हाथों में आई। आपने 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजूकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सेज' पुस्तिका में स्पष्ट किया कि स्वयं विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों तथा विशेषज्ञों ने 19वीं सदी के आरम्भ से ही समय-समय पर यह स्वीकार किया है कि हिन्दी को ही देश की अदालती भाषा बनने का अधिकार है उन्होंने नागरी लिपि की अत्यंत प्रशंसा करते हुए यह सिफारिश की है कि यदि नागरी लिपि के द्वारा अदालत में काम होगा तो जनता के एक विशाल भाग को सुगमता हो जायेगी।

मदन मोहन मालवीय जी ने सन् 1898 में अपने नेतृत्व में 17 सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल के साथ संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गर्वनर जनरल सर एण्टोनी मैक डैनुएल से मिलकर उन्हें एक याचिका प्रस्तुत की। गर्वनर ने स्वीकार किया कि यद्यपि वह अदालतों की भाषा के शीघ्र परिवर्तन के पक्ष में नहीं है फिर भी वे यह मानते हैं कि यदि नागरी लिपि के

प्रयोग में छूट दी जाय तो इससे जनता का हित होगा। उन्होंने याचिका पर पूरी जांच करने और विचार करने का आश्वासन दिया। इधर उर्दू के समर्थकों ने भी उर्दू के लिए आवाज उठाई और सरकार के पास अपने प्रतिनिधि मण्डल भेजे। राजभाषा के रूप में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न पूर्णतः राजनीतिक बन गया और एक सीमा तक साम्प्रदायिक भी। सर सैयद अहमद जैसे मुस्लिम नेता भी हिन्दी के प्रबल विरोधी बन गये। सरकार का झुकाव पहले से ही उर्दू के लिए था। स्पष्ट है कि हिन्दी समर्थकों को अधिक उग्रता से काम लेना पड़ा। अन्ततः बिट्रिश सरकार ने प्रशासन के तीन प्रमुख विभागों - राजस्व बोर्ड, हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार तथा न्याय-विभाग के कमिश्नर से राजभाषा के संबंध में सहमति मांगी। इन विभागों की सम्मति के आधार पर सरकार ने 18 अप्रैल, 1900 को अपना निर्णय इस प्रकार दिया :

सभी लोग अपनी इच्छानुसार अपनी याचिकाएं अथवा शिकायतें नागरी या फारसी लिपि में प्रयुक्त कर सकते हैं। सभी सम्मन, घोषणाएं तथा इस प्रकार के अन्य पत्र जो अदालतों तथा राजस्व बोर्ड के दफ्तरों से जारी किए जाते हैं अब फारसी तथा नागरी दोनों लिपियों में होंगे। इन कागजों में रिक्त स्थान भी दोनों लिपियों में भरे जा सकेंगे। सभी कार्यालयों में (उन्हें छोड़कर जिनमें सब काम अंग्रेजी में होता है) क्लर्क या अधिकारी पद पर भविष्य में केवल ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति की जायेगी जो फारसी तथा नागरी दोनों भली-भाँति लिख-पढ़ सकते हैं।

उर्दू भाषा प्रेमियों ने इस नयी व्यवस्था का विरोध किया। यद्यपि यह व्यवस्था हिन्दी को पूर्णता राजभाषा का दर्जा नहीं देती थी किन्तु आंशिक रूप से ही सही, अदालतों में हिन्दी को स्थान मिल ही गया। चूंकि लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति के अन्तर्गत अंग्रेजी शिक्षा की माध्यम बनती जा रही थी, साथ ही शासन के उच्च स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग होने लगा था। बींसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक आते - आते अंग्रेजी ने उच्च शिक्षा, प्रशासन, राजनीति सभी क्षेत्रों में अपना स्थान बना लिया था। हिन्दी उर्दू का प्रयोग राजकाज के निचली अदालतों तक ही सीमित रहा। सन् 1857 के असफल विद्रोह के बाद अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध व्यापक जनमत तैयार करने के लिए एक 'सार्वदेशिक भाषा' की आवश्यकता अनुभव की गई। राष्ट्रीय चेतना से समपृक्त राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को व्यापक समर्थन मिला। यही से राष्ट्रभाषा हिन्दी आन्दोलन की शुरूआत हुई। इसका एक

अलग इतिहास है। डॉ. राकेश चन्द्र पाण्डेय के अनुसार - "यहाँ केवल इतना संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को किसी प्रकार की कानूनी मान्यता नहीं मिली थी वरन् अपनी व्यापक लोकप्रियता और प्रयोग की सुदीर्घ परम्परा के कारण हिन्दी - अहिन्दी सभी क्षेत्रों के राजनेताओं, समाज सुधारकों एवं चिन्तकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सहर्ष अपनाया।" यह सच है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने का विचार ही सर्वप्रथम अहिन्दी क्षेत्र बंगाल से उत्पन्न हुआ। राष्ट्रभाषा आन्दोलन में महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, काका साहब कालेलकर, लाला लाजपतराय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरूषोत्तम दास टण्डन, मदन मोहन मालवीय, सेठ गोविन्ददास जैसे महान व्यक्तियों का समर्थन और सक्रिय सहयोग रहा। साथ ही सामाजिक सुधार आन्दोलन से सम्बद्ध संस्थाओं आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी राष्ट्र भाषा आन्दोलन में अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाई। हिन्दी प्रचारक संस्थाओं जैसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुजरात विद्यापीठ आदि ने राष्ट्र भाषा हिन्दी आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रभाषा आन्दोलन के कारण राजभाषा के रूप में हिन्दी को एक सशक्त पृष्ठभूमि मिली।

3. स्वतंत्र भारत में राजभाषा हिन्दी

अब प्रश्न यह उठता है कि देश की राजभाषा हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी ? इस प्रश्न को लेकर राजनेताओं में काफी मतभेद रहा। फारसी के पतन के बाद उर्दू का प्रयोग सीमित हो चला था। इसके विपरीत हिन्दी राष्ट्रभाषा आन्दोलन के कारण सशक्त समर्थन पा चुकी थी। हिन्दुस्तानी गांधी जी का दिया हुआ नाम था। किन्तु वह आम बोल चाल की ही भाषा थी। राजकाज के लिए तो हिन्दी ही सर्वथा उपयुक्त थी। संविधान सभा पर हिन्दी को राजभाषा घोषित करने के लिए देश के कोने-कोने से दबाव पड़ने लगा। अन्ततः काफी वाद-विवाद के बाद देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार हिन्दी के अंको के लिए भी मतभेद सामने आये। पुरूषोत्तम दास टण्डन और गोविन्ददास हिन्दी अंको के प्रबल पक्षधर थे किन्तु पं. नेहरू का झुकाव अंतर्राष्ट्रीय अंको के प्रति था। अंततः अन्तर्राष्ट्रीय अंको को ही मान लिया गया। यहाँ पर यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत कराने के लिए आधी शताब्दी तक एक आन्दोलन चलता रहा। भारतीय जनमानस में उसे राष्ट्रभाषा की मान्यता भी मिल गई

किन्तु भाषाई राजनीति के कारण स्वतंत्र भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का नहीं 'राजभाषा' का दर्जा मिला।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा हिन्दी के लिए व्यवस्था के निर्देश मिलते हैं। अनुच्छेद 343 (i) में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा कहा गया है। साथ ही प्रारम्भ के पन्द्रह वर्षो तक अंग्रेजी के प्रयोग को भी उन सभी शासकीय कार्यो के लिए मान्यता मिल गई जिनमें उसका प्रयोग पहले से होता रहा है। संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार प्रारम्भ के पन्द्रह वर्षो में राष्ट्रपति किसी प्रयोजन के लिए अंग्रेजी के साथ हिन्दी का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे। पन्द्रह वर्ष पश्चात हिन्दी के साथ अंग्रेजी का कितना और किन-किन प्रयोजनों के लिए उपयोग होगा, इसका निश्चय संसद करेगी। अनुच्छेद 344 के अनुसार प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की नियुक्ति करेंगे जो हिन्दी के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने और अंग्रेजी का प्रयोग घटाने की सिफारिश करेगा।

अनुच्छेद 345, 346 एवं 347 के अनुसार दो राज्यों के बीच अथवा एक राज्य और संघ के बीच संवाद विनिमय के लिए अंग्रेजी अथवा हिन्दी और परस्पर समझौते से केवल हिन्दी का प्रयोग किया जा सकेगा। किसी राज्य की विधान सभा विधि द्वारा अपने प्रदेश की भाषा को मान्यता प्रदान कर सकेगी। यदि कोई राज्य अंग्रेजी को विधि द्वारा जारी नहीं रखना चाहता तो उस प्रदेश की भाषा राजभाषा हो जायेगी। ..... उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेजी होगी किन्तु राष्ट्रपति या राज्यपाल की पूर्ण सम्मति से हिन्दी अथवा उस राज्य की भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालय की कार्यवाही के लिए प्राधिकृत किया जा सकेगा। राजकीय प्रयोजनों में हिन्दी के विकास के लिए अनुच्छेद 351 का विशेष महत्व है। संघ को यह कार्य पन्द्रह वर्षो में कर लेना चाहिए था किन्तु चार दशकों के बाद भी संघ अपने कर्तव्य को कितना पूरा कर पाया, यह शोध का विषय है।

आज राजभाषा की वर्तमान स्थिति सैद्धांतिक स्तर पर हिन्दी को महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करा चुकी है। किन्तु व्यवहारिक स्तर पर अंग्रेजी की ही प्रमुखता है। मुगलकाल में फारसी के साथ हिन्दी द्वितीय स्तर की राजभाषा थी। कमोवेश वही स्थिति अंग्रेजी के साथ

हिन्दी की है। अंग्रेजी केवल दक्षिण भाषा भाषियों के विरोध के कारण ही आज भी नहीं बनी है बल्कि इसके कुछ सामाजिक और आर्थिक कारण भी हैं जैसे कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ. एन.डी. सर्माधया लिखते हैं - " शिक्षा और राजकार्य की भाषा का प्रश्न एक ही है। जब तक अंग्रेजी के साथ प्रतिष्ठा, सत्ता, नौकरी और पैसा जुड़ा रहेगा तब तक लोगों से अपेक्षा करना कि वे अपने बच्चों को अंग्रेजी न पढ़ाये, मूर्खता होगी और जब तक ये अंग्रेजी के मानस पुत्र सत्तारूढ़ रहेंगे, तब तक अंग्रेजी की शिक्षा प्रचारित रहेगी, अनिवार्य भी कर दी जायेगी और अंग्रेजी राजभाषा बने रहने का दावा भी करती रहेगी। "

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने अंग्रेजी के इस व्यामोह से पिंड छुडाना स्वराज्य का अनिवार्य अंग माना था किन्तु यह इस देश की विडम्बना है कि वह इस व्यामोह से छूटने के बजाय दिन-प्रतिदिन उसमें और जकड़ता जा रहा है। यही हिन्दी की सबसे बड़ी त्रासदी है। राजभाषा हिन्दी के प्रति जनता-जनार्दन की उपेक्षा खासकर हिन्दी भाषी व हिन्दी सीखे लोगों की उपेक्षा भी राजभाषा के कार्यान्वयन में अड़चन है। अकमर्णयता या हीन भावना से प्रेरित होकर लोग हिन्दी के प्रयोग से कतराते हैं। अंग्रेजी की आबोहवा इतनी जबर्दस्त है कि खुद हिन्दी भाषी-हिन्दी प्रेमी दूसरों के सामने अपना सिक्का जमाने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। इसके लिए नवयुग में सिंहनाद-सा शंखनाद करने के लिए अभिनव भारतेन्दुओं को जन्म लेना है। श्रीमद्भगवत गीता में भी है, "यदा-यदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्य हम्।" निजभाषा उन्नति सभी उन्नतियों का मूल सिद्धान्त घोषित करने वाले कलम के धनी सहित्यकारों की सहायता से इस समस्या का भी समाधान किया जा सकता है। हिन्दी साहित्यकारों के लिए यह अंग्रेजी परस्त संकट एक चुनौती है। इस उम्मीद के साथ कि वे जनधर्म को जगाएंगे और जनभाषा को बचाएंगे।

* * *